जटिल समस्या हल की ओर

ईडब्ल्यूएस आर्थिक पैमाने पर भले ही कमजोर हों, सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े तबकों के रूप में चिह्नित नहीं किए जा सकते। ऐसे में इन दोनों के लिए एक ही आय सीमा रखना कैसे वाजिब माना जा सकता है!

राधा शर्मा।।

एक्सपर्ट कमिटी द्वारा आर्थिक दृष्टि से कमजोर तबके (ईडब्ल्यूएस) के आरक्षण के लिए 8 लाख रुपये की आय सीमा को तर्कसंगत करार दिए जाने और केंद्र सरकार द्वारा सुप्रीम कोर्ट में कमिटी की इस रिपोर्ट को मान्य बताए जाने के बाद अब यह जटिल समस्या हल की ओर बढ़ती दिख रही है। दरअसल, आर्थिक दृष्टि से कमजोर तबके के लिए आरक्षण के मामले में 8 लाख रुपये की आय सीमा को सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी गई थी और इस मामले में कोर्ट ने सरकार से कई वाजिब सवाल पूछे थे। कोर्ट ने कहा था कि नीति निर्धारित करना सरकार का काम है और वह उस क्षेत्र में दखल नहीं देना चाहता, लेकिन सरकार द्वारा निर्धारित नीतियों का ठोस, तार्किक और संवैधानिक आधार होना चाहिए। इसी संदर्भ में सुप्रीम कोर्ट ने ओबीसी आरक्षण में क्रीमी लेयर के लिए 8 लाख की आय सीमा के समान ही आर्थिक रूप से कमजोर तबके के आरक्षण में भी 8 लाख की आय सीमा रखे जाने पर सवाल उठाते हुए कहा था कि दोनों तबकों में मूलभूत अंतर है।

ईडब्ल्यूएस आर्थिक पैमाने पर भले ही कमजोर हों, सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े तबकों के रूप में चिह्नित नहीं किए जा सकते। ऐसे में इन दोनों के लिए एक ही आय सीमा रखना कैसे वाजिब माना जा सकता है! इसके बाद सरकार ने प्रस्तावित आय सीमा पर पुनर्विचार की तैयारी दिखाते हुए एक एक्सपर्ट कमिटी गठित कर दी। कमिटी ने सभी पहलुओं से विचार–विमर्श करने के बाद हालांकि इसी आय सीमा को जारी रखने का सुझाव दिया, लेकिन अपनी रिपोर्ट में इसके ठोस आधार भी बताए। अव्वल तो यह कि आर्थिक आधार पर आरक्षण के लिए सिर्फ एक साल की आय का ब्योरा मांगा जाता है, जबकि ओबीसी मामले में पिछले तीन वर्षों की सालाना आय का ब्योरा देखा जाता है। दूसरी बात यह है कि ईडब्ल्यूएस के विपरीत ओबीसी मामले में खेती से होने वाली आय और परिजनों की सैलरी से होने वाली आय शामिल नहीं की जाती। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो आर्थिक आरक्षण के मामले में आय सीमा 8 लाख होने के बावजूद ओबीसी आरक्षण के मुकाबले यह ज्यादा कड़ी हो जाती है। इसलिए दोनों को समान नहीं कहा जा सकता।

इसके साथ ही कमिटी ने यह भी कहा कि उसकी सिफारिशें अगले सत्र से लागू की जाएं ताकि इस सत्र की शुरुआत में होने वाले विलंब से बचा जा सके। इन सबसे इतना तो माना जा सकता है कि सरकार और कमिटी ने अपनी तरफ से स्थितियों को साफ करने की कोशिश की है। लेकिन आज के दौर में आरक्षण अपने आप में इतना जटिल मसला हो गया है और इससे इतने परस्परविरोधी हित जुड़ गए हैं कि कब, कहां, किस वजह से पेच उलझ जाएगा, कहा नहीं जा सकता। बहरहाल, इस स्पष्टीकरण और पहल से अगर नीट–पीजी एडमिशन की अटकी हुई प्रक्रिया आगे बढ़ जाए तो वह भी एक बड़ी राहत होगी।

समाधान का कार्यभार

अशोक वोहरा।

धर्म-दर्शन

सबको नियमबद्ध करने की आवश्यकता अनुभव की गयी। सामाजिक विकास के साथ ही उठी समस्याएँ भी प्रतिदिन जटिल होती जा रही थीं। इनके समाधान का कार्यभार अनेक वैदिक शाखाओं ने संभाल लिया, जिसके परिणामस्वरूप गहन विचार–विमर्श पूर्वक सूत्रग्रन्थों का सम्पादन किया गया।। इन सूत्रग्रन्थों ने इस दीर्घकालीन बौद्धिक सम्पदा को सूत्रों के माध्यम से सुरक्षित रखा, इसका प्रमाण इन सूत्रग्रन्थों में उद्धृत अनेक प्राचीन आचार्यों के मत–मतान्तरों के रूप में मिलता है। यह तो विकास का एक क्रम था जो तत्कालिक परिस्थिति के कारण निरन्तर हो रहा था। यह विकासक्रम यहीं पर नहीं रुका अपितु सूत्रग्रन्थों में भी समयानुकूल परिवर्तन एवं परिवर्धन किया गया जिसके फलस्वरूप ही परवर्ती स्मृतियों का जन्म हुआ।

संपादकीय

सबका हो विकास

आज भारत की छवि हिंदुत्ववादी राष्ट्र की बन रही है, जहां लोकलुभावन कल्याणकारी योजनाओं पर जोर है। इसे एक करिश्माई नेता ने राजनीतिक तौर पर आकर्षक बनाया है। लेकिन इन्हीं कारणों से हम इन चुनौतियों में फंस गए हैं। एक बार फिर हमारा उदार लोकतंत्र सबको साथ लेकर चलने वाले वैकल्पिक ढांचे से इस नैरेटिव का जवाब दे सकता है। इससे आर्थिक बेहतरी भी आएगी। भारत एक खुला समाज रहा है। यहां के लोगों को अपनी संस्कृति और देश पर गर्व है। एक बार फिर हमारे लोकतंत्र और अर्थव्यवस्था में सुधार लाने की जरूरत है। हाल में हमारे लोकतांत्रिक संस्थान कमजोर हुए हैं। चाहे वह संसद हो या न्यायपालिका, चुनाव आयोग या अकादमिक जगत। राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना को सिर्फ हिंदू पहचान से जोड़ने की जो गलत कोशिश हो रही है, उससे देश बंट और कमजोर हो रहा है। पड़ोस के मित्र देशों से हमारे संबंध खराब हुए हैं, जबकि चीन इस बीच आक्रामक हुआ है। इस मुश्किल राजनीतिक माहौल का असर अर्थव्यवस्था पर भी पड़ा है। हम पहले की लोकलुभावन और संरक्षणवादी नीतियों को अपना रहे हैं। हम आर्थिक बेहतरी के लिए युवा आबादी का लाभ ले सकते हैं, लेकिन इसके हाथ से निकलने का खतरा पैदा हो गया है। करोड़ों लोग बेरोजगारों की जमात में शामिल हो रहे हैं। आजादी की 75वीं सालगिरह पर अगर हम अपने लोकतंत्र को और मजबूत कर पाए तो यह राष्ट्र के प्रति सच्ची श्रद्धा होगी।

सवाल यह भी था कि क्या ब्रिटिश राज के दौर के सूबों और रियासतों को साथ लाया जा सकता है? क्या जनता में राष्ट्रीय एकता की भावना पैदा होगी?

लोकतंत्र की ताकत

रघुराम राजन।।

आजादी के वक्त देश के निर्माताओं ने लोकतंत्र की राह चुनी। यह एक साहसी और मुफीद कदम था, जिसे आजादी के 75वें साल में शायद भुला देना बहुत आसान है। लेकिन क्या आप जानते हैं कि बंटवारे के बाद एक देश के रूप में भारत का वजूद बचा रहेगा या नहीं, यह भी पता नहीं था। फिर इसके लोकतांत्रिक बने रहने की बात तो जाने ही दीजिए। सवाल यह भी था कि क्या ब्रिटिश राज के दौर के सूबों और रियासतों को साथ लाया जा सकता है? क्या जनता में राष्ट्रीय एकता की भावना पैदा होगी? क्या उनमें कोई ऐसा जज्बा होगा, जिससे वे धर्म, जाति, भाषा और सामाजिक–आर्थिक पहचान से ऊपर उठकर खुद को एक देश का हिस्सा मानेंगे? महात्मा गांधी को डर था कि गोरों की जगह देश के अभिजात्य वर्ग के लोग ले लेंगे और वे गरीब और अशिक्षित जनता के हुक्मरान बन जाएंगे। राजनीतिक आजादी के इस भारतीय एलीट वर्जन को लेकर उनका डर गलत नहीं था।

इन सारी आशंकाओं के बीच भारत मजबूत लोकतंत्र के रूप में उभरा। हम खुशकिस्मत हैं कि आजाद भारत के शुरुआती नेता लोकतंत्र के प्रति समर्पित थे। उन्होंने लोकतांत्रिक परंपराएं और प्रक्रिया तय की, फिर उन्हें मजबूत किया। वे बाद में इसमें सुधार कर पाए और यह काम

उन्होंने बार–बार किया। भारत में लोकतंत्र जिस तरह से विकसित हुआ, उससे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर देश की इज्जत बढ़ी। सॉफ्ट पावर हासिल हुई। विकासशील देशों की आवाज के रूप में भारत का सम्मान किया जाने लगा, भले ही हमारा आर्थिक रसूख बहुत नहीं था।

लेकिन वक्त गुजरने के साथ लोकतंत्र के शुरुआती ढांचे को लेकर आशंकाएं भी सामने आईं। पहला, हमारा संवैधानिक ढांचा शायद शासन करने वाले नेताओं की योग्यता पर बहुत भरोसा करता था। इसलिए मान लिया गया कि कार्यपालिका अच्छी नीयत से काम करेगी। शायद यह सोच सही भी थी क्योंकि तब तक देश के संस्थानों का इम्तहान नहीं हुआ था। फिर भी यह कहना गलत नहीं होगा कि सरकार को नागरिकों के मुत्तालिक अपनी शक्तियां तय करने की दी गई छूट मुश्किलों को जन्म देने वाली थी। इसलिए क्योंकि पूरी सरकारी मशीनरी को एक इंसान के इशारे पर काम करना था। आंबेडकर ने माना था, 'अगर नए संविधान के तहत गलतियां होती हैं तो इसकी वजह यह नहीं है कि हमारा संविधान बुरा है। तब हमें यह कहना पड़ेगा कि वह इंसान बुरा है।' फिर भी इस समस्या से निपटने के पर्याप्त उपाय नहीं किए गए। दूसरा, संविधान में विकेंद्रीकरण को सिर्फ राज्य के स्तर पर सीमित किया गया। इसमें गांव या निकाय स्तर पर सशक्तिकरण की एक हद तक अनदेखी हुई। इसकी एक वजह यह थी कि आंबेडकर जैसे किसान मानते थे कि 'गांव में रहने वाले नासमझ हैं। संकीर्ण सोच रखते हैं और वहां सांप्रदायिकता का बोलबाला है।' उन्हें लगता था कि देश तभी आधुनिक बन पाएगा, जब राष्ट्रीय और राज्य सरकारें कमान संभालें। जरूरत पड़ने पर भी सत्ता के विकेंद्रीकरण की गुंजाइश नहीं रखी गई। तीसरा, आर्थिक व्यवस्था क्या हो, तय नहीं किया गया। गरीब देश को पहले पहल राजा–महाराजाओं को प्रिवी पर्स देना पड़ा, जिसे लेकर व्यापक नाराजगी थी। निजी संपत्ति की मजबूत सुरक्षा को भी स्थापित नहीं किया गया। हमारे शीर्ष नेता तब दुनिया में दबदबा रखने वाली वैचारिक सोच से प्रभावित थे। खासतौर पर सोवियत संघ से। इसलिए आर्थिक मामलों में सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियां केंद्रीय भूमिका में आ गईं, जबकि संरक्षित निजी क्षेत्र की भूमिका सीमित रही।

अष्टयोग-5054

	3	7	5			2
5	38		32	1	27	
	4		2	3	6	
3	32		32		33	
6		4	7		5	
	24		36	4	30	5
1			7		2	

प्रस्तुत खेल सुडोकू व जोड़ की पद्धति का मिश्रण है. खड़ी व आड़ी पंक्तियों में 1से 7 तक के अंक लिखने अनिवार्य हैं. गहरे काले वर्ग में लिखी संख्या चारों ओर के 8 वर्गों की संख्या का कुल योग होगी. सीधी अथवा आड़ी पंक्तियों में 1 से 7 तक के अंक होना अनिवार्य है.

अष्टयोग 5053 का हल

7	5	1	3	6	4	2
6	34	6	33	1	33	7
5	1	3	6	7	2	4
1	22	2	35	4	34	5
4	1	5	6	2	7	3
3	30	4	37	5	33	6
2	4	7	5	3	6	1

Jagrutidaur.com, Bangalore

अपना ब्लॉग — शिक्षा का ही मामला ले लीजिए

मोहन। ये चिंताएं सिर्फ ऐकडेमिक नहीं थीं। भारत ने 1975–76 में आपातकाल के दौरान तानाशाही का स्याह पहलू देखा। यह बात भी गौर करने लायक है कि आजादी के बाद शुरुआती सालों में सरकार की ओर से जरूरी चीजों और सेवाओं की पहुंच, खासतौर पर गरीबों तक बेहद सीमित थी। शिक्षा का ही मामला ले लीजिए। 1950 में भारतीयों को औसतन साल भर की शिक्षा मिलती थी। चीन के लिए यह औसत तब 1. 8 साल था। 1970 तक भारत इस मामले में 1.7 वर्ष तक पहुंच पाया। तब तक चीन के लिए यह औसत 4. 2 साल हो चुका था। लेकिन लोकतंत्र की खूबी होती है कि यह खुद को सुधार सकता है। आपातकाल के बाद भारत ने लोकतांत्रिक संस्थानों को मजबूत किया। शायद उतना नहीं, जितना किया जाना चाहिए था। तब क्षेत्रीय पार्टियां, जिनमें से कुछ वंचितों की नुमाइंदगी करती थीं, उन्हें अधिक वोट मिले। तब जाकर जनता को मिलने वाली सरकारी सेवाओं को बेहतर करने पर ध्यान दिया गया।